

भागूभाई धनाभाई खलासी व एक अन्य

बनाम

गुजरात राज्य व अन्य

5 अप्रैल, 2007

(एस.बी. सिन्हा और मार्कडये काटजू, जे जे.)

विदेशी मुद्रा संरक्षण और तस्करी निवारण अधिनियम, 1974/तस्कर
और विदेशी मुद्रा छलसाधक (संपत्ति समपहरण) अधिनियम, 1976:

प्राधिकारी द्वारा अपीलार्थी के विरूद्ध पारित निवारक निरोध और
संपत्ति की ज़ब्ती का आदेश चुनौती-

उच्च न्यायालय द्वारा अनुमत- प्राधिकारी ने आदेश को रद्द कर
दिया परन्तु संपत्ति को विमोचित नहीं किया-

उच्च न्यायालय द्वारा यह देखते हुए रिट याचिका खारिज कर दी
गई कि विक्रय-विलेख की वैधता, उसके निष्पादन या क्या वह असत्य है
या मनगढ़ंत है, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत निर्णित नहीं
की जा सकती-याचिकाकर्ताओं को उपयुक्त न्यायालय के समक्ष उचित
कार्यवाही शुरू करने हेतु निर्देशित किया गया- लेटर्स पेटेंट अपील अपीलार्थी
तृतीय पक्ष के पक्ष में अपने द्वारा विक्रय विलेख के निष्पादन को स्वीकार

करता है और उचित मंच के समक्ष शिकायत को उत्तेजित करने का अधिकार सुरक्षित रखते हुए अपील को वापस लेने के लिए प्रार्थना करता है-

उच्च न्यायालय ऐसी अनुमति देने से इन्कार करता है-अपील पर आयोजित:

उच्च न्यायालय ने रिट याचिका पर विचार नहीं किया क्योंकि उसमें तथ्य का विवादित प्रश्न शामिल था-

इसके विरुद्ध अपील अपीलार्थी द्वारा दायर की गई और तीसरे पक्ष द्वारा नहीं-उच्च न्यायालय ने आरोपों/जवाबी आरोपों की शुद्धता/अन्यथा पर ध्यान नहीं दिया-न्याय तक पहुंच एक मानव अधिकार है-

जब किसी विवादकर्ता का अधिकार मौजूद होता है, तो एक उपाय होना चाहिए-क्योंकि, उच्च न्यायालय की खंड पीठ ने अपीलार्थियों को अपील को वापस लेने की अनुमति दी जिसे उन्हें बदतर स्थिति में नहीं रखा जा सकता था-

इस तरह, उच्च न्यायालय की खंड पीठ के आदेश का हिस्सा जो अपीलार्थियों को एक उपयुक्त मंच के समक्ष अपनी शिकायत व्यक्त करने की अनुमति देने से इन्कार करता है, कायम नहीं रखा जा सकता-

भारत का संविधान-अनुच्छेद 226

सिद्धांत: 'जहां अधिकार है, वहां उचार है' का सिद्धांत-की प्रयोज्यता।

विदेशी मुद्रा संरक्षण और तस्करी निवारण अधिनियम, 1974 के तहत अपीलार्थी के विरुद्ध निवारक निरोध का आदेश पारित किया गया था। - उसकी संपत्तियों को तस्कर और विदेशी मुद्रा छलसाधक (संपत्ति समपहरण) अधिनियम, 1976 के तहत ज़ब्त कर लिया गया था। उसने विरोध के आदेश के साथ-साथ तस्कर और विदेशी मुद्रा छलसाधक (संपत्ति समपहरण) अधिनियम, 1976 के तहत पारित आदेश पर सवाल उठाते हुए उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका दायर की, जिसे उच्च न्यायालय द्वारा अनुमति प्रदान कर दी गई थी।

बाद में, सक्षम प्राधिकारी द्वारा उस आदेश को रद्द करने का आदेश पारित किया गया जिसके द्वारा और जिसके तहत संपत्तियों को ज़ब्त करने हेतु निर्देशित किया गया था। कथित तौर पर ज़ब्त की गई अचल संपत्तियों को विमोचित नहीं किया गया था। अपीलार्थी द्वारा प्रत्यर्थी सं. 4 को पक्षकार के रूप में संयोजित करने हेतु एक रिट याचिका दायर की गई जिसने तर्क दिया था कि अपीलार्थी ने उक्त संपत्ति का उसके पक्ष में हस्तांतरण कर दिया था।

उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि क्या विक्रय-विलेख वैध है और इसे याचिकाकर्ताओं द्वारा निष्पादित किया गया है या असत्य और मनगढ़ंत है,

इसका निर्णय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत याचिकाकर्ताओं द्वारा शुरू की गई कार्यवाही में नहीं किया जा सकता है। याचिकाकर्ताओं से उचित मंच के समक्ष उचित कार्यवाही शुरू करने की अपेक्षा की गई थी।

अपीलार्थी द्वारा उच्च न्यायालय के लेटेस पेटेंट के तहत उसके विरुद्ध एक अंतर-अदालत अपील दायर की गई थी। उसने कथित तौर पर यह स्वीकार किया कि उसने प्रत्यर्थी सं. 4 के पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित किया था और एक उपयुक्त मंच के समक्ष शिकायतों को उत्तेजित करने का अधिकार सुरक्षित रखते हुए अपील को वापस लेने के लिए प्रार्थना की। उच्च न्यायालय की खंड पीठ ने अपील को वापस लेने की अनुमति देते हुए ऐसी अनुमति देने से इन्कार कर दिया।

अतः वर्तमान अपील प्रस्तुत हुई।

अपीलार्थी ने तर्क दिया कि उच्च न्यायालय की खंड पीठ ने उक्त आदेश पारित करने में एक स्पष्ट त्रुटि की, जहां तक कि यह इस बात को ध्यान में रखने में विफल रहा कि अपील को प्राथमिकता देकर, अपीलार्थी को इससे बदतर स्थिति में नहीं रखा जा सकता था।

प्रत्यर्थी ने प्रस्तुत किया कि अपीलार्थी उच्च न्यायालय की खंड पीठ के समक्ष गलत प्रतिनिधित्व करने का दोषी था और उसने बड़ी संख्या में जाली दस्तावेजात दायर किए; और यह कि अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी सं. 4 के

पक्ष में विक्रय विलेख के निष्पादन को स्वीकार कर लिया है, उसे किसी अन्य मंच के समक्ष मुकदमा करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

आंशिक रूप से अपील को स्वीकार करते हुए, न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया:

1.1. उच्च न्यायालय की खंड पीठ के साथ-साथ एकल न्यायाधीश ने स्वीकार किया कि मामले की योग्यता में प्रवेश नहीं किया। उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने पक्षकारान के संबंधित मामलों पर ध्यान दिया और इस आधार पर रिट याचिका पर विचार करने से इन्कार कर दिया कि इसमें तथ्य के विवादित प्रश्न शामिल हैं। [पैरा 9] [904-डी]

1.2 शिकायत रखने वाले पक्ष के पास एक उपाय होना चाहिए। न्याय तक पहुँच एक मानव अधिकार है। जब ऐसा अधिकार मौजूद होता है, तो एक विवादकर्ता के पास जहां अधिकार है, वहां उचार है, सिद्धांत के संदर्भ में उपाय होना चाहिए। [पैरा 10] [904-एफ]

द्वारका प्रसाद अग्रवाल (डी) जरिये विधिक प्रतिनिधि व एक अन्य बनाम रमेश चंद्र अग्रवाल व अन्य, [2003] 6 एस सी सी 220; द्वारका प्रसाद अग्रवाल (डी) जरिए विधिक प्रतिनिधि व एक अन्य बनाम बी. डी. अग्रवाल व अन्य, [2003] 6 एस सी सी 230; स्वामी आत्मानंद व अन्य बनाम श्री रामकृष्ण तपोवनम व अन्य, [2005] 10 एस सी सी

51; मेसर्स एसोसिएटेड ट्यूबवेल्स लिमिटेड बनाम आर. बी. गुजरमल मोदी, ए.आई.आर. (1957) एस सी 742; महाराष्ट्र राज्य बनाम रामदास श्रीनिवास नायक व एक अन्य , एआईआर (1982) एस सी 1249 और गुरुवायूर देवस्वम प्रबंध समिति व एक अन्य बनाम सी. के. राजन व अन्य [2003] 7 एस सी सी 546; का अवलम्ब लिया गया।

1.3. उच्च न्यायालय की खंड पीठ ने अपने पक्षकारान द्वारा लगाए गए आरोपों और जवाबी आरोपों की शुद्धता या अन्यथा पर ध्यान नहीं दिया। अपीलार्थी किसी जालसाजी का दोषी था या नहीं, यह निर्धारित नहीं किया गया था। [पैरा 18] [906-ई]

1.4. उच्च न्यायालय की खंड पीठ का अधिक अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने का इरादा नहीं था। यदि उसका ऐसा करने का इरादा था, तो वह कानून द्वारा ज्ञात प्रक्रिया का सहारा ले सकता था। उसने अपीलार्थी को अपील वापस लेने की अनुमति दी। ऐसा करके, दलों को उसी पद पर हटा दिया गया था जिस पर वे थे। जब उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका को खारिज कर दिया, अपीलार्थी को इससे बदतर स्थिति में नहीं रखा जा सकता था। अतः, विवादित आदेश का वह भाग जिसके द्वारा और जिसके तहत खंड पीठ ने अपीलार्थी को उचित मंच के समक्ष अपनी शिकायतों को व्यक्त करने के लिए अनुमति देने से

इन्कार कर दिया, कायम नहीं रखा जा सकता [पैरा 19,20 और 21]
[906-ई-जी]

सिविल अपीलीय अधिकारिता: 2007 की सिविल अपील सं. 1818

[1999 के एस सी ए सं. 7606 और 2005 के एल पी ए सं. 455
में अहमदाबाद में गुजरात उच्च न्यायालय के अंतिम निर्णय और आदेश
दिनांकित 06.10.2005 से।]

अपीलार्थीगण की ओर से अशोक देसाई और एस. बी. संजुआनवाला
और ऋत्विक् पांडा।

उत्तरदातागण की ओर से सुशील कुमार जैन, एच. डी. थानवी, सरद
सिंघानिया, पुनीत जैन, क्रिस्टी जैन और प्रतिभा जैन।

न्यायालय का निर्णय एस. बी. सिन्हा, जे. द्वारा दिया गया था।

1. अनुमति प्रदान की गई।
2. विदेशी मुद्रा संरक्षण और तस्करी निवारण अधिनियम, 1974 के
तहत अपीलार्थी के विरुद्ध निवारक निरोध का आदेश पारित किया
गया था।

उसके पास भदरवाल जिला जयपुर में संपत्तियां तथा देना बैंक की
सावधि जमा रसीद थी। उक्त संपत्तियां तस्कर और विदेशी मुद्रा

छलसाधक (संपत्ति समपहरण) अधिनियम, 1976 के तहत ज़ब्त की गयी थी। उसने निरोध आदेश के साथ-साथ तस्कर और विदेशी मुद्रा छलसाधक (संपत्ति समपहरण) अधिनियम, 1976 के तहत गुजरात उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका दायर की। अनुमति दे दी गई। उसके विरुद्ध दायर की गयी विशेष अनुमति याचिका भी सक्षम प्राधिकारी द्वारा खारिज कर दी गयी थी। उसके द्वारा संपत्तियों को वापिस करने हेतु प्रतिनिधित्व किया गया था।

सक्षम प्राधिकारी द्वारा दिनांक 30.1.1996 को एक आदेश पारित करते हुए आदेश दिनांकित 24.9.1979 को रद्द कर दिया गया, जिसके द्वारा और जिसके तहत संपत्तियों को ज़ब्त करने का निर्देश दिया गया था। कथित तौर पर, जबकि सावधि जमा रसीद उसे वापस कर दी गई थी, अचल संपत्तियां नहीं। अपीलार्थी द्वारा एक रिट याचिका दायर की गई थी। उक्त रिट याचिका में लगाए गए आरोपों को अस्वीकार तथा विवादित कर दिया गया था। प्रत्यर्थी सं. 4 जिसे पक्षकार के रूप में संयोजित किया गया था, ने तर्क दिया कि अपीलार्थी ने उसके पक्ष में संपत्ति का हस्तांतरण कर दिया था। उच्च न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश ने निर्णय और आदेश दिनांकित 17.1.2005 के द्वारा उक्त रिट याचिका को खारिज करते हुए कहा;

"6. मैंने याचिका, याचिका के ज्ञापन के साथ संलग्न दस्तावेजात, शपथ पत्र और अन्य दस्तावेजात का अवलोकन कर लिया है जो संबंधित पक्षकारान के विद्वान अधिवक्तागण द्वारा मुझे दिखाए गए हैं। वर्तमान याचिका के तथ्य विचित्र हैं क्योंकि कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान कुछ बदलाव किए गए हैं। यह दूसरे पक्ष का मामला है कि विचाराधीन संपत्ति को याचिकाकर्ताओं द्वारा कार्यवाही को अंतिम रूप देने से पहले पंजीकृत विक्रय विलेख के माध्यम से तृतीय पक्ष को बेच दिया गया है, लेकिन याचिकाकर्ता ने इससे इन्कार कर दिया है।

याचिकाकर्ताओं का मामला है कि याचिकाकर्ताओं ने विचाराधीन संपत्ति को नहीं बेचा है, लेकिन कुछ व्यक्तियों ने जाली और मनगढ़ंत दस्तावेजात बनाए हैं और संपत्ति को याचिकाकर्ताओं से छिपे तौर और अवैध रूप से धोखाधड़ी से पंजीकृत विक्रय विलेख के माध्यम से हस्तांतरित किया है। यह भी स्थापित किया गया है कि कार्यवाही के दौरान, संपत्ति जयपुर शहरी विकास प्राधिकरण को सौंप दी गई है। इस प्रकार, इस याचिका में इस न्यायालय के विचार के लिए जो प्रश्न उत्पन्न होते हैं, वे तथ्यों के विवादित प्रश्न हैं।

यह याचिकाकर्ताओं का मामला है कि वे संपत्ति के मालिक हैं और यह प्रतिवादी प्राधिकारियों का कर्तव्य है कि वे विचाराधीन संपत्ति का कब्जा उन्हें सौंप दें और दूसरी ओर, यह प्रथम दृष्टया स्थापित किया गया है कि तृतीय पक्ष का हित लंबे समय से विक्रय विलेख के माध्यम से निर्मित हुआ है और इसे याचिकाकर्ताओं द्वारा किसी और पर चुनौती नहीं दी गई है और उक्त पंजीकृत विक्रय विलेख आज तक प्रचलन में है।

इसलिए, क्या उपरोक्त विक्रय विलेख वैध है और इसे याचिकाकर्ताओं द्वारा निष्पादित किया गया है या यह असत्य और मनगढ़ंत है, इसका निर्णय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत याचिकाकर्ताओं द्वारा शुरू की गई कार्यवाही में नहीं किया जा सकता है। याचिकाकर्ताओं को उपयुक्त न्यायालय के समक्ष उचित कार्यवाही शुरू करने की आवश्यकता है।

जहाँ तक उन निर्णयों का संबंध है, जिन पर याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने भरोसा किया है, मैं उक्त निर्णयों में निर्धारित अनुपात से पूरी तरह सहमत हूँ। परन्तु जैसा कि पहले कहा गया है, इस याचिका में तथ्यों के विवादित प्रश्न उत्पन्न हुए हैं और इसलिए, याचिकाकर्ताओं को उक्त निर्णय का लाभ नहीं मिल सकता है।”

3. अतः विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस प्रश्न पर विचार नहीं किया कि क्या अपीलार्थी ने उक्त संपत्ति प्रत्यर्थी सं. 4 के पक्ष में हस्तांतरित की थी या नहीं। अपीलार्थी द्वारा बॉम्बे उच्च न्यायालय के लेटर्स पेटेंट के तहत उसके विरुद्ध एक अंतर-अदालत अपील दायर की गई थी। जाहिरा तौर पर, उसमें एक सवाल उठाया गया था कि क्या वही प्रभाव और सार अपीलार्थी या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा दायर किया गया था।

4. एक हस्तलेखन विशेषज्ञ ने राय दी कि आवेदन दिनांकित 04.04.1997 पर दो हस्ताक्षर और शपथ पत्र की प्रमाणित फोटो प्रति दिनांकित 13.01.2003 पर दो जगह हस्ताक्षर अपीलार्थी के नहीं थे। अपीलार्थी को खण्ड पीठ के समक्ष पेश होने हेतु निर्देशित किया गया और उससे कथित तौर पर स्वीकार किया कि उसने प्रत्यर्थी सं. 4 के पक्ष में विक्रय विलेख को निष्पादित किया था। अपीलार्थी की और से विद्वान अधिवक्ता द्वारा शिकायतों को उचित मंच के समक्ष उठाने का अधिकार सुरक्षित रखते हुए अपील को वापस लेने की प्रार्थना की गई थी। खण्ड पीठ ने अपील को वापस लेने की अनुमति प्रदान करते हुए यह कहते हुए एेसी अनुमति देने से इन्कार कर दिया;

"इस मोड़ पर, श्री संजनवाला ने प्रस्तुत किया कि अन्य उपाय करने का उनका अधिकार सुरक्षित रखा जाए। लेकिन, मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों और मामले की

गंभीरता को देखते हुए, हमने श्री संजनवाला को स्पष्ट कर दिया कि हम इस आदेश को पारित नहीं कर सकते हैं और अपील को वापस लेने के लिए सरल अनुमति नहीं दे सकते हैं, लेकिन हम इस अपील पर गुण-दोष के आधार पर निर्णय लेना पसंद कर सकते हैं और अंततः मामले में संबंधित व्यक्ति को परिणाम भी भुगतने पड़ सकते हैं। इसके बाद श्री संजनवाला ने अपना अनुरोध छोड़ दिया।”

5. अपीलार्थी की ओर से पेश हुए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक देसाई प्रस्तुत करेंगे कि उच्च न्यायालय की खंड पीठ ने उक्त आदेश पारित करने में एक स्पष्ट त्रुटि की है, जहां तक कि वह इस बात पर विचार करने में विफल रही है कि अपील को प्राथमिकता देकर, अपीलार्थी को इससे बदतर स्थिति में नहीं डाला जा सकता था।

6. हालांकि प्रत्यर्थी की ओर से पेश हुए विद्वान अधिवक्ता श्री सुशील कुमार जैन ने हमारा ध्यान प्रत्यर्थी संख्या 4 द्वारा पुष्टि किए गए जवाबी शपथ पत्र की ओर आकर्षित किया था, जिसमें तर्क दिया गया था कि अपीलार्थी उच्च न्यायालय की खंड पीठ के समक्ष गलत प्रतिनिधित्व करने का दोषी था और उसने बड़ी संख्या में जाली दस्तावेजात दायर किए थे। किसी भी स्थिति में, उसने प्रत्यर्थी सं. 4 के पक्ष में विक्रय विलेख के

निष्पादन को स्वीकार कर लिया है, जिसे किसी अन्य मंच के समक्ष मुकदमा करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

7. उक्त जवाबी शपथ पत्र में लगाए गए आरोपों का अपीलार्थी द्वारा अपने प्रत्युत्तर में खंडन किया गया है और उस पर विवाद किया गया है।

8. ऐसा प्रतीत नहीं होता कि हस्तलेखन विशेषज्ञ की कथित रिपोर्ट के संबंध में उसका संज्ञान लेकर कोईभी आदेश पारित किया गया हो, यहां तक कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 340 के तहत कोई कार्यवाही भी शुरू नहीं की गई हो।

9. उच्च न्यायालय की खंड पीठ के साथ-साथ विद्वान एकल न्यायाधीश ने स्वीकार किया कि मामले की योग्यता में प्रवेश नहीं किया। विद्वान एकल न्यायाधीश ने पक्षकारान के संबंधित मामलों पर ध्यान दिया और इस आधार पर रिट याचिका पर विचार करने से इन्कार कर दिया कि इसमें तथ्य के विवादित प्रश्न शामिल हैं। उन्होंने राय दी कि अपीलार्थी अपनी शिकायतों को एक उपयुक्त मंच के समक्ष उठा सकता है। इसके विरुद्ध एक अंतर-अदालत अपील केवल अपीलार्थी द्वारा दायर की गई थी। प्रत्यर्थी ने ऐसा नहीं किया। इस प्रकार अपीलीय न्यायालय की अधिकारिता को केवल इस प्रश्न तक सीमित रखा जाना चाहिए था कि क्या रिट याचिका का निर्धारण विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा योग्यता के आधार पर किया जाना चाहिए था।

10. शिकायत रखने वाले पक्ष के पास एक उपाय होना चाहिए। न्याय तक पहुँच एक मानवाधिकार है। जब ऐसा अधिकार मौजूद होता है, तो एक विवादकर्ता के पास 'जहां अधिकार है, वहां उचार है' सिद्धांत के संदर्भ में एक उपाय होना चाहिए।

11. द्वारका प्रसाद अग्रवाल (डी) द्वारा विधिक प्रतिनिधि व एक अन्य बनाम रमेश चंद्र अग्रवाल व अन्य, [2003] 6 एस सी सी 220] में, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया;

"22. पक्षकारान के मध्य विवाद प्रमुख रूप से एक नागरिक विवाद था और कंपनी अधिनियम के प्रावधानों के तहत कोई विवाद नहीं। धारा 9 सिविल प्रक्रिया संहिता सिविल न्यायालयों को नागरिक प्रकृति के सभी विवादों को निर्धारित करने के लिए अधिकार क्षेत्र प्रदान करती है जब तक कि इसे किसी कानून के तहत स्पष्ट रूप से या आवश्यक निहितार्थ द्वारा वर्जित न किया गया हो। सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र की सीमा का आसानी से अनुमान नहीं लगाया जा सकता है। किसी सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र पर रोक लगाने वाले प्रावधान की सख्त व्याख्या की आवश्यकता है।

यह अच्छी तरह से तय है कि न्यायालय आमतौर पर निर्माण के पक्ष में झुकेगा, जो सिविल न्यायालय के अधिकार

क्षेत्र के प्रतिधारण को बनाये रखेगा। इस संबंध में प्रमाण का भार उस पक्ष पर होगा जो यह दावा करता है कि दीवानी अदालतों के अधिकार क्षेत्र को हटा दिया गया है। (साहेबगौड़ा बनाम ओगेप्पा देखें)। अन्यथा भी, दीवानी अदालतों के अधिकार क्षेत्र को कंपनी अधिनियम 1956 के तहत पूरी तरह से बाहर नहीं किया गया है।"

12. द्वारका प्रसाद अग्रवाल (डी) द्वारा विधिक प्रतिनिधि व एक अन्य बनाम बी.डी. अग्रवाल व अन्य [2003] 6 एस सी सी 230] में, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया;

“38. इस मामले का एक और भी पहलू है जिस पर ध्यान दिया जाना चाहिए। किसी भी न्यायालय द्वारा पारित आदेश के कारण किसी पक्ष को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पीड़ित नहीं किया गया जा सकता, जो उस पर बाध्यकारी नहीं है। वह आधार जिस पर न्यायिक प्रक्रिया का सहारा लिया जा सकता है, वह है मुकदमें में तर्कसंगतता और निष्पक्षता। हमारे संविधान के साथ-साथ अंतरराष्ट्रीय संधियों और सम्मेलनों के तहत निष्पक्ष सुनवाई का अधिकार एक बुनियादी मौलिक/ मानव अधिकार है। कोई भी प्रक्रिया जो एक निष्पक्ष परीक्षण प्राप्त करने में किसी पक्ष के रास्ते में आती है, वह भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का

उल्लंघन होगा। एक स्वतंत्र और निष्पक्ष न्यायाधीकरण द्वारा एक निष्पक्ष सुनवाई मानव अधिकारों की सुरक्षा एवं मौलिक स्वतंत्रता बाबत यूरोपियन सम्मेलन के अनुच्छेद 6 (1) का हिस्सा है। [कलार्क(प्रोक्यूरेटर फिस्कल, किर्ककाल्डी) बनाम केली देखें]। इसके अलावा, याचिकाकर्ता ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के संदर्भ में उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका दायर की हो उस पर विचार नहीं किया गया होगा क्योंकि उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश कथित समहति आदेश के परिणामस्वरूप उसे आगे बढ़ाने के लिए पारित किया गया था। उच्च न्यायालय ने आम तौर पर अपने ही आदेश को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण रिट जारी नहीं की होगी। इस मामले को देखते हुए अनुच्छेद के 32 के तहत इस याचिका पर विचार किया जाना चाहिए।"

13. स्वामी आत्मानंद व अन्य बनाम श्री रामकृष्ण तपोवनम व अन्य, [2005] 10 एस सी सी 51] देखें।

14. अभिलेख पर यह दिखाने के लिए कुछ भी नहीं है कि खण्ड पीठ ने लेटर्स पेटेंट अपील को दागते समय किसी अन्य मामले में प्रवेश करने का इरादा किया था। न्यायाधीशों का रिकॉर्ड, जैसा कि सर्वविदित है, अंतिम

और निर्णायक होता है। इससे संबंधित कोईभी विवाद उसी न्यायालय के समक्ष उठाया जाना चाहिए।

15. मेसर्स एसोसिएटेड ट्यूबवेल्स लिमिटेड बनाम आर. बी. गुजरमल मोदी, (ए.आई.आर. 1957) एस सी 742 में, इस न्यायालय ने न्यायालय में हुई बातचीत को संदर्भित करने की प्रथा की निंदा करते हुए कहा; 906 सुप्रीम कोर्ट रिपोर्ट्स [2007] 4 एस.सी.आर.

" 4. हालांकि, इस न्यायालय के एक बहुत ही वरिष्ठ अधिवक्ता ने इस आवेदन को करने में जो रास्ता अपनाया है, उसके प्रति कड़ी अस्वीकृति को रिकार्ड में रखे बिना हम इस मामले से अलग नहीं हो सकते। समीक्षा आवेदन में उन्होंने विस्तार से उल्लेख किया है कि उनके अनुसार, पूर्व अवसर पर न्यायालय में क्या हुआ था और प्रत्येक न्यायाधीश ने बहस के दौरान क्या कहा था। समीक्षा आवेदन में विस्तार से बताया गया है कि पीठासीन न्यायाधीश ने बहस के दौरान क्या कहा और व्यक्त किया और उनके विचार क्या थे और पीठ के अन्य न्यायाधीशों ने क्या कहा और व्यक्त किया तथा प्रत्येक का क्या विचार था। इन बयानों के बाद एक भरोसेमंद दावा पेश किया जाता है कि आवेदन कैसे और क्यों खारिज किया गया था।"

16. एक बार फिर महाराष्ट्र राज्य बनाम रामदास श्रीनिवास नायक व एक अन्य, ए.आई.आर. (1982) एस सी 1249, में इस न्यायालय ने राय दी;

"7. इसलिए न्यायाधीशों का रिकार्ड निर्णायक है। ना तो अधिवक्ता और ना ही विवादी इसका खण्डन करने का दावा कर सकते हैं, स्वयं न्यायाधीश के समक्ष ही, लेकिन कहीं और नहीं।"

17. गुरुवायूर देवस्वम प्रबंध समिति व एक अन्य बनाम सी. के. राजन व अन्य, [2003] 7 एस सी सी 546; भी देखें।

18. खण्ड पीठ ने अपने समक्ष पक्षकारान द्वारा लगाए गए आरोपों और प्रत्यारोपों की शुद्धता या अन्यथा पर ध्यान नहीं दिया। अपीलार्थी किसी जालसाजी का दोषी था या नहीं, यह निर्धारित नहीं किया गया था।

19. इसलिए श्री जैन के इस तर्क को स्वीकार करना मुश्किल है कि खण्ड पीठ का उद्देश्य व्यापक अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करना था। यदि उसका ऐसा करने का इरादा था, तो वह कानून द्वारा ज्ञात प्रक्रिया का सहारा ले सकता था।

20. इसने अपीलार्थी को अपील वापस लेने की अनुमति दी। ऐसा करते हुए, पक्षकारान को उसी पद पर हटा दिया गया था जिस पर वे थे। जब विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका को खारिज कर दिया था।

इस प्रकार हमारे विचार में अपीलार्थी को इससे बदतर स्थिति में नहीं रखा जा सकता था।

21. इसलिए, हमारी राय है कि विवादित आदेश का वह हिस्सा जिसके द्वारा और जिसके तहत खंड पीठ ने अपीलार्थी को उचित मंच के समक्ष अपनी शिकायतों को व्यक्त करने की अनुमति देने से इन्कार कर दिया था, कायम नहीं रखा जा सकता। हालाँकि, हम लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं देते हैं।

अपील की आंशिक रूप से अनुमति है।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी परनीत कौर (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।